माया-दर्पण

श्रीकान्त वर्मा

माया दर्पण

श्रीकान्त वर्मा



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक-२४२
सम्पादक-नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series Title No 242

MAYA DARPAN

[Poems]

SHRIKANT VERMA

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1967

Price Rs 3.50

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता २७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग वाराणसी ५

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९६७

मूल्य ३.५०

सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी ५

मा। या। द। र्प। ण



शामलालजी के लिए

माया-दर्पण

देर से उठकर
छत पर सर धोती
खड़ी हुई है
देखते ही देखते
बड़ी हुई है
मेरी प्रतिमा
लड़ते-झगड़ते
मैं आ पहुँचा हूँ
उखड़ते-उखड़ते
भी
मैंने
रोप ही दिये पैर
बैर
मुझे लेना था
पता नहीं
कब क्या लिया था
क्या देना था।

अपना एकमात्र इस्तेमाल नहीं किया था—
एक मुर्दे की तरह
अपने को
अपने परिवार में छिपाकर

तुम्हारे जीर्ण जीवन को लिया था ।
(दोनो हाथो मे सँभाल
अपने होठो से
छुआकर)
बहते हुए पानी मे चुलाकर
अपने पाँव

मैं अनुभव कर रहा हूँ सब कुछ
बस छूकर
चला जाता है
✓ छला जाता है
आकाश भी

सूर्य से
जो दूसरे दिन
आता नही है
कोई और सूर्य भेज देता है ।

विजेता है
✓ कौन
और
किसकी पराजय है—
सारा ससार अपने कामो मे
फँसाये अपनी उँगलियाँ
उधेडबुन करता है ।
डरता है
✓ मुझसे
मेरा पडोस ।
मैं अपनी करतूतो का दरोगा हूँ ।

नहीं, एक रोज़नामचा हूँ
मुझमें मेरे अपराध
हू-ब-हू कविताओं-से
दर्ज हैं ।
मर्ज़ हैं
जितने
उनसे ज़्यादा इलाज हैं ।
मेरे पास हैं कुछ कुत्ता-दिनों की
छायाएँ
और बिल्ली-रातों के
अन्दाज़ हैं ।

मैं इन दिनों और रातों का
क्या करूँ ?
मैं अपने दिनों और रातों का
क्या करूँ ?
मेरे लिए तुमसे भी बड़ा
यह सवाल है ।

यह एक चाल है,
मैं हरेक के साथ
शतरंज खेल रहा हूँ
मैं अपने ऊलजलूल
एकान्त में
सारी पृथ्वी को बेच रहा हूँ ।

मैं हरेक सगे के साथ
सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड
ढो रहा हूँ।
मैं सुखी
हो रहा हूँ
मैं दुखी
✓ हो रहा हूँ
मैं सुखी-दुखी होकर
दुखी-सुखी
हो रहा हूँ
मै न जाने किस कन्दरा मे
जाकर चिल्लाता हूँ मैं
हो रहा हूँ। मैं
हो रहा हूँ ऽऽ

अनुगूँज नही जाती।
लपलपाती
मेरे पीछे
चली आ रही है।

चली आये।
मुझे अभी कई लडकियो से
करना है प्रेम
मुझे अभी कई कुण्डो मे
करना है स्नान
अभी कई तहखानों की
करनी है सैर
मेरा सारा शरीर सूख चुका
मगर साबित हैं
पैर।

मार

मैं अपना अन्धकार, अपना सारा अन्धकार
गन्दे कपड़ों की
एक गठरी की तरह
फेंक सकता हूँ ।
मैं अपनी मार खायी हुई
पीठ
सेंक सकता हूँ
धूप में
बेटियाँ और बहुएँ
धूप में
अपनी-अपनी
आयु के
दाने
बिन
रही
हैं ।

सारे संसार की कामनाएँ दिन गिन रही हैं ।
क्या मैं भी दिन गिनूँ ?
अपने निराकार में
रेंग और भाग दौड़ और रहे गये ने
मैं पूछकर
आगे बढ़ जाता हूँ—
मगर खबरदार ! मुझे कवि मत कहो ।
मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ
ईजाद करता हूँ
गाली
फिर उसे गुनगुनाता हूँ ।

मैं कविताएँ बकता नही हूँ ।
मैं थकता नही हूँ
कोसते ।
सरदी मे अपनी सन्तान को
केवल अपनी
हिम्मत की रजाई मे लपेटकर
पोसते
ग़रीबो के मुहल्ले से निकलकर
मै
एक बन्द नगर के दरवाज़े पर
खडा हूँ ।
मैं कई साल से
पता नही अपनी या किसकी
शर्म मे
गडा हूँ ।
तुमने मेरी शर्म नही देखी ।
मै मात कर
सकता हूँ
महिलाओ को ।
मैं जानता हूँ
सारी दुनिया के
वनबिलावो को
हमेशा से जो बैठे है
ताक मे
काफी दिनो से मैं
अनुभव करता हूँ तकलीफ
अपनी

नाक मे।
मुझे पैदा होना था अमीर घराने मे।

अमीर घराने मे
पैदा होने की यह आकाक्षा
साथ साथ
बडी होती है।
हरेक मोड पर
प्रेमिका की तरह
मृत्यु
खडी होती है।

शरीरान्त के पहले मैं सब कुछ निचोड कर उसको दे जाऊँगा जो भी मुझे मिलेगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ किसी के न होने से कुछ भी नही होता, मेरे न होने से कुछ भी नहीं हिलेगा। मेरे पास कुरसी भी नही जो खाली हो। मनुष्य वकील हो, नेता हो, सन्त हो, मवाली हो — किसी के न होने से कुछ भी नही होता।

नाटक की समाप्ति पर
आँसू मत बहाओ।
रेल की खिडकी से
हाथ मत हिलाओ।

दिनचर्या

एक अदृश्य टाइपराइटर पर साफ, सुथरे
कागज-सा
चढ़ता हुआ दिन,
तेजी से छपते मकान,
घर, मनुष्य
और पूँछ हिला
गली से बाहर आता
कोई कुत्ता।

एक टाइपराइटर पृथ्वी पर
रोज़ रोज़
छापता है
दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता।

कहीं पर एक पेड़
अकस्मात छप
करता है सारा दिन
स्याही में
न घुलने का तप।

यहीं पर एक स्त्री
अकस्मात उभर
करती है प्रार्थना

हे ईश्वर ! हे ईश्वर !
ढले मत उमर ।

बस के अड्डे पर
एक चाय की दुकान
दिन भर बुदबुदाती है
'टूटी हुई बेंच पर
बैठा है
उल्लू का पट्ठा
पहलवान ।'

जलाशय पर अचानक छप जाता है
मछुए का जाल
चरकट के कोठे से
उतरती है धूप
और चढ़ता है
दलाल ।
(एक चिड़चिड़ा बूढ़ा थका क्लर्क ऊबकर छपे हुए शहर को
छोड़ चला जाता है ।

एक दिन

एक सुबह उठते ही लगता है
मेरा विश्वास
जो मेरी परछाईं की तरह
मेरे संग था
कल मुझको सोते में
छोड़कर चला गया—
मैं बूढ़ा हो गया हूँ।
छूटा जा रहा है मेरा प्रेम। मैं बिलकुल
अकेला हो जाऊँगा।
क्या होगा !
किसको पुकारूँगा ?
सारा दिन कैसे गुजारूँगा ?
सोने के पहले अपने वस्त्र
क्या आईने में
अपना अकेलापन देखने के लिए
उतारूँगा ?

स्त्रियाँ जो प्रेमिका नहीं थीं न वेश्याएँ
बिस्तर पर
छाप की तरह
दूसरे सवेरे धुल जाती हैं।

केवल एक स्त्री की साडी की गन्ध
और चूड़ियों से
झरता हुआ दिन (या उसके साथ
✓ पड़ा हुआ मैं
और पलग से
उतरता हुआ दिन)

एक सुबह उठते ही लगता है
वह मुझको
छोडकर चली गयी। मै अचानक
बूढा हो गया हूँ
क्या होगा ? कैसे गुजारूँगा ?
क्या मैं अपने गुजरे जीवन को
एक कागज पर लिखी हुई
✓ कविता की तरह
दूसरे कागज पर
उतारूँगा ?

क्या मैं यह सोचूँगा
कि यदि मैंने उस पर शासन भी
किया होता
तो वह नही जाती !
और क्या मै फिर
शासन के लिए
एक शासक का चेहरा
(जिसे उसने किसी और से लिया था)
जा कर उधार लाऊँगा ?

क्या मै एक स्त्री के लिये
नकली
तमचा लिए
बिस्तर पर लूँगा
अवतार ?
क्या मैं उसी स्त्री से
फिर से
रचाऊँगा
विवाह ?

आखिर मैं लूँ भी तो किससे सलाह ?
दिन चढते-चढते
मैं अकेला हो जाता हूँ।

मैं हरेक रास्ते पर कुछ दूर
चलकर
पाता हूँ
यह रास्ता
गलत था।
मेरा विश्वास जो मेरी परछाईं की तरह
मेरे सग था
मुझे छोड गया है
मैं अपनी दो टागो पर
टँगा हुआ
गट्ठर हो गया
हूँ।
वह स्त्री
जो छोडकर चली गयी

जानती थी
मै उसके वक्ष मे छिपाये हुए
मुंह
एक शुतुमुगनुमा
ठहुर
हो गया हूँ ।
मैं क्या करूँ ?

क्या मैं छपाऊँ इश्तिहार ?
क्या मैं बन जाऊँ किसी
क्लब का सदस्य ?
क्या मैं बैठे-बैठे
करूँ सभी
परिचित-अपरिचित को फोन ?
क्या मैं तमाम मूर्ख स्त्रियो से हँस-हँसकर
बात करूँ, झुक-झुक नमस्कार ?
दूसरो के बच्चो से
झूठ मूठ प्यार ?
अपनी वर्षगाँठ पर
एक अल्प-समारोह ?
अपने प्रेम-पत्रो से घबराकर
क्या मैं करूँ
समाचारपत्रो से
मोह ?

मैं क्या करूँ ? क्या मैं जीने की कोशिश में
किसी और दुनिया मे
जा मरूँ ?

करना चाहता हूँ
मैं उसका पति,
उसका प्रेमी
और
उसका सर्वस्व
उसे देना चाहता हूँ
और
उसकी गोद
भरना चाहता हूँ।

मैं अपने आसपास
अपना एक लोक
रचना चाहता हूँ।
मैं उसका पति, उसका प्रेमी
और
उसका सर्वस्व
उसे देना चाहता हूँ
और
पठार
ओढ लेना
चाहता हूँ।
मैं समूचा आकाश
इस भुजा पर
तावीज की तरह
बाँध
लेना चाहता हूँ।

मैं महुए के वन में
एक कण्डे सा
सुलगना, गुंगुवाना
धुंधुवाना चाहता हूँ ।
मैं अब घर
जाना चाहता हूँ ।

घर से निकल कर

मैं किसी भी सडक पर
निकल जाता
और किसी भी
बस पर आहिस्ता
बैठ जाता
✓ [हूँ]

—जैसे
✓ मेरा कोई नाम
नही ।

मै कोई भी किताब
किसी भी
बेंच पर
जाकर
छोड आता
हूँ ।

मैं सडक पर
गुजरती हुई
हरेक

स्त्री के साथ
सोने की इच्छा
लिये हुए
जीवन से मृत्यु
को
ओर
चला जाता
हूँ।

(फिर छिपाकर अपना मुँह)
भगदड़ मे
घुसकर
अपने को
पैरों पर सौंप
भागती हुई समस्त
दुनिया के साथ
(एक क्षणिक)
आत्मीयता !

(न रुकता हुआ दिन !
न रुकती हुई
अपने अन्दर की टकसाल
जो
फेंक रही है
बाहर

✓ सूर्योदय, महीने, तारीख
और साल)

मे घुमकर किसी तरह किसी
ट्रेन मे
✓ जजीर
खीच देता
हूँ ।

)

मत्स्य बेध

(हिम्मतशाह के चित्रों के लिए एक कविता)

✓
कुछ कहा जा रहा है शरीर से ।
चोख रही हैं उँगलियाँ,
आख उतर आयी है पीठ पर,
जघा मे घोमला,
आईना टूटकर
गिरा हुआ है जमीन पर ।
✓ जबान छिदी हुई है तीर स ।

✓अपना ही पीछा करते करते दबे पाव
नहर म
काले कपडे पहने हुए वह
'शाम न हो, शाम न हो'
कहती कहती पहुँच गयी है
दोपहर म ।

गडबडा गया हूँ मै इच्छा को बिजली,
वहम को स्त्री,
भूल को पुस्तक कहता हुआ ।
बसता है शहर या गडता है
त्रिशूल ?

आँगन में रोज बड़ा होता है
पेड़
या केवल
मँडलाती है चील ?
सड़क पर
गिरता है चन्द्रमा,
झपटती है भीड़
या दस्तखत करती है
परछाईं
एक दीवार की
दूसरी दीवार पर ?
पैरों पर चढ़ती हैं चींटियाँ
कन्धे पर पंजे गड़ाता है
रीछ,
भुजा पर प्रेमिका
करती है कै।

—बची रह गयी हैं
मुद्राएँ सब,
हाथ, धनुष,
और
उरोज।

९. जीवन-बीमा

दिन-भर एक पुतला नगरपालिका के चौराहे पर शहर को समाचारपत्र सा लिये हुए हाथ म अकेला पढता रहा। आखिर मे ऊबकर पुतले ने लम्बी जमुहाई ली, हाथो से गिरा समाचार-पत्र। किसी ने नही केवल घर के दरवाजे पर कई साल से बैठे जासूसी पुस्तक पढने वाले बूढे ने पूरी तरह यह महसूस किया शाम हुई।

रॉटरी पर जाने से पहले
समाचारो को बाट दो
आर्ट गैलरी मे मृत्यु,
सिगरेट पर टक्स,
वित्तमन्त्री का वक्तव्य,
पानी की व्यवस्था मे सुधार,
ध्यान दे रही है सरकार।

बन्द करो। घर मे निकलकर
कोई सडक पर
आकर चिल्लाता है बन्द करो
समाचारपत्रो के दफ्तर
रुपयो की टकसाल।
मैने बिताये हैं
पैसे और खबरो के
बिना कई साल।

बन्द करो
कपडा बुननेवाली मिल।
टाँग दो शो विण्डो मे
दागो से भरा
पेटीकोट।

मै किसी पार्टी को नही,
केवल इस
नगे पुतले को दूँगा

अपना वोट
नगरपालिका के चौराहे जो
हौज मे मजे से
पेशाब कर रहा है।

छि छि। मै अपने कानो मे उठकर
भर लेता हूँ रुई। पढता हूँ
समाचार
पानी की व्यवस्था म सुधार।
मेज पर पडा है एक तार
बधाई का।
मेरी ससुराल के
लोगो का
पसन्द है स्वभाव
जमाई का।

✓ हा मे हा
अब तक मिलाता आया हूँ

मैं सबकी पसन्द म ।
दफ्तर मे घर । घर से सिनेमा । सिनेमा मे
पलग । और कभी कभी
पिकनिक । पडता नही हूँ मैं
किसी छल-छन्द मे ।

मेरा विवाह किसी स्त्री से नही
बल्कि
हुआ था
जमाने की पसन्द से,
पत्नी मिली है
दहेज मे ।

अनुभव करता हूँ मैं
अपने को पुरुष
केवल एक बार
सेज मे

राष्ट्रभाषा हिन्दी की जय ।
कचरा महादेव के
शिवालय के पास
एक नन्दी
डकारता है
राष्ट्रभाषा हिन्दी की जय ।
मै एक पब्लिक लैवेटॅरी मे
बैठा हुआ

सोच रहा हूँ
मेरी कविता मे लय
क्यो नही है ?

मै कभी कोई कानून नही तोडता ! हमेशा
सडक के बायी ओर
पटरी पर
चलता हूँ।
मै घर का किराया,
बिजली का बिल,
बीमे की किश्तें
चुकाने के बाद
प्रेम करता हूँ
देश से।

गुमनाम दुनिया मे
किसी के पुकारे जाने पर
कोई और वहाँ
हाजिर होता है
तपाक से।
मैं एक पेशाबघर की दीवार पर
जाकर
लिख आता हूँ
चाक से
खबरदार ! हैजा फैलाती हैं
मक्खियाँ,
खबर, अखबार,
टाँगें फैलाती हैं

रण्डियाँ,
घनी रोजगार !
सावधान ! फैल रहा है
संसार !!

मगर मिकुड़ूँ तो कहाँ तक सिकुड़ूँ ।
मैं इस कदर
सिकुड़ चुका हूँ कि
छोटे से छोटे
अवसर के छल्ले से
अपने को साफ़-साफ़ बचाकर
गुजर सकता हूँ ।
माचिस की डिबिया मे घर,
जेब म भविष्य,
हाथ मे ट्राजिस्टर सेट !
सिकुड़ूँ तो कहाँ तक
सिकुड़ूँ !

क्या मैं पड़ा रहा हूँ अपनी स्त्री की जाँघ की
दराज मे ?
शिव ! शिव ! मै अपनी कल्पना पर
छिपा लेता हूँ मुँह
लाज मे ।
नही सोचनी है
अलाय बलाय !
मेरी स्त्री
फूँक फूँक कर
पीती है चाय ।

ठण्डा पीजिएगा या गर्म ?
यह पूछते हुए
मेरे चहरे पर
अब भी दौड जाती है
शाम।
✓हरेक की शाम के पीछे
इतिहास है।
मगर रखो,
इतिहास
मैंने बी० ए० के बाद
✓ छोड दिया था।

मैं किसी से नहीं केवल अपने से
कहता हूँ—
भई! मतलब रखना है
✓ बस काम से।
मौसम बदला है
✓ कल शाम से।
मैं ही क्या, बडे-बडे
अफसर भी
✓डरते हैं जुकाम से,
✓ सर्दी से।
कुछ स्त्रियां
प्रेम करती हैं
✓वर्दी से,
बाकी
✓ नामर्दों से।

पारिजात

चूता है पारिजात
उसकी एक एक बात ।

नगर-वधू

युद्ध बाद एक-एक शव के सिरहाने
बैठी है शान्ति,
सभी शान्ति प्रेमी थे ।

परिणति

दिन से जूझता हुआ मैं दिन के भी आगे निकल गया
समय को बदलने के प्रयत्न मे
एक कवि समय म बदल गया ।

प्रेमिका

फैले हुए समय से सिमटे हुए समय तक
एक सनातन लय सी
मुझको ले जाती है ।
एक अकेलापन ले मुझसे
एक अकेलापन वह
मुझको दे जाती है ।

धुन्ध

एक आदमी दूसरे से बचता हुआ
गुज़र जाता है ।

फुलचुक्की का प्यार

फुलचुक्की बैठी कनेर पर
कहती है टेरकर—
कहो तो कनेर-रानी
लाऊं वसन्त को घेरकर ।

विद्युत्

आकाश मे द-राऽ- र

कमरे का साथी

रोज शाम कोई द्वार खटखटाता है
द्वार खोलता हूँ, देखता हूँ, अवसाद
शीश झुकाये हुए
कमरे मे चुपचाप चला आता है।

उत्तराधिकार

कुछ भी नहीं याद
✓ केवल रामायण की पोथी पर जमी हुई धूल सा इकट्ठा है
मन पर पुरखों का अवसाद।

मैंने नहीं सुना

✓ दिन एक पीली पुकार सा डूबता चला गया।
घाट ने सुना—
मगर मैंने नहीं सुना।
✓ घाट पर मुझे कोई दिये-सा जला गया।

जगल अवाक्

जून की दुपहरी, बाज का झपट्टा, चिडिया की चीख,
—जगल अवाक् ।

हम लोग

एक-दूसरे के घरो की दीवार पर लिखी हुई गालिया हैं,
एक दूसरे को पढ रहे हैं ।

दुपहर

नदी के किनारे कोई आसमान धो रहा है।
दुपहर है,
महुए का पेड सो रहा है।

पठार की नियति

पठार कभी बादॅल, कभी इमली, कभी कुछ-भी नहीं की छाँह मे।
✓ छाँह चली जाती है
पठार को पीठ पर लाद एक मिटती हुई राह मे।

•

बुरुश का फूल

दुपहर-भर उडती रही सडक पर मुरुम की धूल
शाम को उभरा मै,—
तुमने पुकारा मुझे बुरुश का फूल ।

शिशिर

जूडो सा दिन झुका हुआ है
शहर के अन्दर एक शहर
लुका हुआ है
वसन्त की प्रतीक्षा में
कविताओं का जुलूस
रुका हुआ है !

घाट पर नहाती हुई

घाट पर नहाती हुई
पानी पर अपनी
तसवीर छपाती हुई
कन्धे अपने सुख के
केश सुखाती हुई

सूरज चमकता है

एक पत्ता झरता है
दूसरा सिहरता है
तीसरा एक बड़े पत्ते की गोद में
दुबकता है
सूरज चमकता है।

समरकाल की प्रिया

समरकाल जब नही रहा तो
समरकाल की याद ओढकर
जिया ।

दोपहर

एक चरमराया हुआ फाटक
देख रहा है उदासीन
सडक पर खडी एक ट्रक पर
माल ढोने का नाटक ।

ऊब

•

स्वेद मे डूबे हुए सब जन्म पर पछता रहे हैं
पालनो के शिशु !
चौंक या खिसिया रहे या पेड पर फन्दा लगाकर
आत्महत्या कर रहे हैं
शहर के मैदान ।
उमस मे डूबे हुए हैं घर, सवेरा
घोसले और घास ।
आ रहा या जा रहा है बक रहा या झक रहा है
निरर्थक कोई किसी के पास !
मृत्युधर्मी प्रेम अथवा प्रेमधर्मा मृत्यु,
अकारण चुम्बन तडातड
अकारण सहवास ।

हारकर सब लड रहे हैं
हारकर सब पूवजो से
झगडते पत्तो सरीखे झड रहे हैं ।
घूमकर प्रत्येक छत पर
उतर आया शहर का आकाश ।

हर दिवस मौसम बदलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।
हर घडी दुनिया बदलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।
भागकर त्योहार से

हैं युद्ध की तैयारियों मे व्यस्त !

एक दुनिया से निकल कर दूसरी मे जा रहे हैं
युद्ध, चुम्बन, पालने ले।
स्वेद मे डूबे हुए सब जन्म पर पछता रहे हैं।

समझ-मे-न-आने-वाला एक दिन

समझ-मे न आने-वाला एक दिन
पैर पटक
पृथ्वी पर, चला जा रहा है।
गड़बड़ तारीख़
अपनी कम्बख़्ती पर
झुँझला रही है।
सड़क अपने को सँवार
खड़ी है
दुकान के किनारे।
शहर के कोने से बढ़ता हुआ हल्ला
और हल्ले से निकलकर
एक भगायी हुई औरत
बस के स्टैण्ड पर खड़ी है।

नकली कवियो की वसुन्धरा

धन्य यह वसुन्धरा । मुख म
इतनी सारो
सदियो का झाग,
केशो मे अन्धकार ।
✓ एक अन्तहीन प्रसव पीडा मे
पडी हुई
✓ पल-पल
मनुष्य उगल रही है,
नगर फेंक रही है,
बिलो से मनुष्य निकल रहे हैं,
✓ दरबो से मनुष्य निकल रहे ह
टोकरी के नीचे छिपे
मुर्गों के मसीहा-कवि
✓ बाँग दे रहे हैं,
सुबह हुई ऽऽ
धन्य । धन्य । कवियो की ऐयाशी झूठ मे
✓ लिपटी
वसुन्धरा ।

—वसुन्धरा । सूजा हुआ है क्यो
उदर ?
✓ नसें क्यो

विषाक्त हैं ?
सांसो मे
सीले जगल — जैसी
यह कैसी
बास है ?
कवियो की झूठ मे लिपटी हुई
वेश्या—मां
अपनी सन्तानो का स्वर्ग देख रही है

✓बरस रहा है अन्धकार इस कुहासे पर
भुजा पर,
मसान पर,
समुद्र पर,
दुनिया-भर के तमाम
सोये हुए
बन्दरगाहो पर
✓डूबती हुई अन्तिम
प्रार्थना पर
बरस रहा है
अन्धकार—
मगर वेश्याई स्वर्ग मे
✓ फोडो की तरह
उत्सव फूट रहे हैं।

बरस रहा है अन्धकार।
✓ मगर उल्लू के पट्ठे।
स्त्रियाँ—रिझाऊ कविताएँ
लिख रहे हैं।

भेडियो के कोरस की तमाच्छन्न अन्ध रात्रि !
मनुष्य के अन्दर
मनुष्य,
सदी के अन्दर
एक सदी
खो रही है—

मगर इससे क्या ! वसुन्धरा
सोये मसानो मे
जागते मसान
बो रही है ।

आदमी का कोट पहन
चूहे
निर्वसन मनुष्य की
पीठ कस रहे हैं,
चुहियो के कन्धो पर
पख
फूट रहे हैं और कण्ठ मे
क्लासिक सगीत !
अन्धकार मे सबके सब
बिल्लियो की तरह
लड रहे हैं ।
नकली वसन्त के
गोत्रहीन पत्ते
झड रहे हैं ।

धन्य ! धन्य ! ओ नकली कवियो के वसन्त मे
लिपटी वसुन्धरा !

—वसुन्धरा ! तेरे शरीर पर
झुर्रियाँ हैं
✓ अथवा
दरार ?
होठो पर उफन रहा
पाप !
छटपट कर
टूट रहे
चट्टानी हाथ !
धो-धो जाता है
कौन
बार-बार आसू से
कीचड मे लथपथ
इस
पृथ्वी के पाँव ?
नदियो पर झुका हुआ कांपता है कौन कवि अथवा सन्निपात ?

जिज्ञासाहीन अन्धकार मे
कीचड की शय्या पर
स्वप्न देखती हुई
सुखी है वसुन्धरा ! मनुष्य
उगल रही है
नगर
फेंक रही है।

टोकरी के नीचे कवि बाँग दे रहे हैं।

दिनारम्भ

✓ एक मारवाडी मुनीम जमुहाई लेता हुआ
कुजी का गुच्छा खोसे
अपनी टेंट मे
चलता चला चलता है दुकान की ओर,
बही खोल लिखता है
श्री गणेशाय नम , शुभ-लाभ ।
जमुहाई लेकर फिर एक बार जोर से
कहता है—
✓ॐ नमो शिवाय !

पटरी पर खडी एक गाय
रँभाती है
गली से एक स्त्री
हाथ मे झाडू
सिर पर टोकरा लिये
आती है ।

सडक पर धल, आँख मे कीचड
✓✓ पेड पर धूप,
धोती पर दाग,
चौके मे धुआँ,
अचानक हर घर मे
सुबह

फट पडती है ।

एक बिल्ली मुंडेर पर
    बैठी हुई
        दूसरी बिल्ली से
            झगडती है ।

दुकानें खुलती हैं ।

वापसी

तितली की तरह उडकर लडकियों का ससार
बैठ जाता है
कोट पर
नोट पर
हस्ताक्षर होता है
सारा दिन
ढोता है
कवि किसी और की स्त्री के वियोग में
अपने वनवास को
घास को
चरते हैं उतरते हैं
बैल
आकाश से और
चरते चले जाते हैं
डुलाते हैं
किसी और बरस पर
किसी और बरस का
पखा—

नगे नहा रही है
दोपहर
धँसकर तालाब म

रनाव मे
सब कुछ
हो सकता है
सेमल चटखता है
भाय-भाय
दुनिया मे
केवल एक बच्चा
किलकता है—
दु खो से लदी एक गाडी गायब हो जाती है सोने म आकर)
कपडे सुखाकर
युद्ध के
मैदान
मे
ध्यान
मे
ढोगी
झोने से
जल पर
मेरी
प्रत्येक
हलचल पर
शकलें बदलकर
राज्य सत्ताएँ
छायाएँ
बाधकर
हरेक अर्द्ध सत्य को
कही लिये जाती हैं—

(बूढ़ी पृथ्वी के हृदय में इच्छाएँ चुलबुलाती हैं—
गाती हैं गान
यौवन
का)
धान
झुलस गया
| खेत में
| रेत में
रास्ता
बनाती हुई
चली जा रही है एक पतली-सी धार—
तार ! अब की बार
मैंने दिया है
नहीं जाने का
(न कोई मतलब था
आने का
न कोई मतलब है
जाने का)
दुख उठाने का
सिलसिला—
यह किला
भेदकर
दूसरे
किले
में
एक-एक जिले में
देश में
छः

अपने अपमान को
तमतमा आया है सूर्य का मुख
रोष में
खींच रहा है
कोई स्नायु
आयु—
संवत्सर उछल गये हैं
लाल पत्थर पर
क्रुद्ध शार्दूल-से

• •

दाह
शायद हरेक में
था
लेकिन मैंने केवल
अपना
महसूस—
मैं अपना जुलूस
खुद निकाल कर
अपने पर
पत्थर
और प्रशस्तियाँ
अपने ही
अभिनय पर
परिणय पर
अपनी परिणीता के
मैं ही गवाह

ब्याह
मैंने नहीं किया

मैंने नहीं किया
वह सब
जो करना था
गोद से निकल कुल
अकेले उतरना था
(करना था डांड गुज़र जाने का)
कवि कवि होता है
(बोता है)
बोता हूँ मैं अपनी मृत्यु
एक एक
कविता में
एक-एक
कविता में
एक एक भंगिमा सवेरा, सूर्यास्त
युद्ध, प्रणय
और
शोक
मर्त्युलोक
का
सूय
मे
अपने
और अपने
से
पहले

के
अपने
के
दाह
मे—
प्रवाह
में

दुनिया नामक एक वेवा का शोक-गीत

लगभग सडको-ही-सडको भागता हुआ बियाबान
उल्लुओ का दिवास्वप्न
चुकते कलाकारो के शहरो और टोलो पर
औरते
सोफो पर, नही तो
किचन मे,
कवि खटोलो पर।
उल्लुओ की चुँधी हुई
नजरो के लिए
प्रिय दृश्य जुटाने का कार्यक्रम।

शहरो के चिन्ह।
शहरो के चिन्ह
और
प्रेम के मलबे पर
बैठी हुई
कवियो की मूर्ख प्रियतमाएँ
माग रही है
स्नान मे गुनगुनाने के लिए
एक पक्ति
और
जूडे मे खासने के लिए

एक साफ
झूठ।

लगभग सडकों-ही-सडकों भागता हुआ उल्लुओ का दिवा-स्वप्न और कुछ उन्ही सडको पर दुनिया नामक एक बेवा का शव अपने कन्धो पर उठाये हुए भाडे के लोग तथा काले कपडे पहने गायक और कवि आपस मे एक दूसरे के शोक-गीत की दाद देते हुए व शव-यात्रा कभी भी समाप्त न होने की प्रार्थना करते हुए चले जा रहे हैं पता नही किधर दुनिया जिधर कभी नही गयी थी

(उल्लुओ का कोरस ओऽम शान्ति)
अस्तु ––
लोगो के चिन्ह
तथा अबके अकारण
अवतार
ढूंढ रहे हैं
पृथ्वी से ऊबकर आकाश
आकाश से ऊबकर
पाताल
(बीवी से ऊबकर
साहित्य
बच्चा से ऊबकर
भविष्य)

तथास्तु —
प्रभु के चरण-चिन्हो पर
चली जा रही हैं
दो बूढी औरतें
रसातल की ओर। सभ्यता और संस्कृति!

किसी भी तरह

वह
कुछ और अधिक
दूभर हो गया है—
वैसे,
पता नही चलता
एक पत्ते के
झरने का—
क्या कोई मतलब
था, इधर से,
गुजरने का ?
या, जैसे
मौसम आता
है और जाता
है केवल
दीवारो पर
छाप छोड़ !

यहा पर सुलह हुई
वहाँ पर टूट
यहाँ पर किताब खुली
वहाँ पर नीद
यहाँ पर प्रेमिका उदास हुई

वहा पर दरख्त शोकमग्न हुआ
यहा
और
वहाँ
दोनो जगह से वह
आगे बढ
गया है
वैसे, कुछ अर्थ
नही होता पीछे
रह जाने
का ।

(सिर पर से दहशत मे
चिड़ियाँ गुजरती
हैं
घास पर आहत
पडा
हुआ
बादल
चिंघाडता
है
सैकडो
शिकारी कुत्ते
उसकी नाडी मे–
हिरन
भागा
जाता है)

वह सिर
उठाता है,
सिर
नीचे
करता है।

सम्यबोध

इतने मकान पास-पास सटे-सटे !
मगर प्रेम नहीं !
इतना घनत्व !
इतनी सकुलता !
इतनी एकता !
मगर सभी
कटे-घटे !

कारा में दण्ड भोगती प्रदीप छायाएँ
मुक्ति की एक
यही खिडकी-सा
खुलता आकाश
पर मकानों की
खिडकी से
लटकी नहीं कोई
बाँह नहीं ।

सहमति नहीं, भाषा नहीं, प्रस्ताव नहीं ।
एक साथ उठी हुई
मुट्ठियाँ नहीं
केवल क्रौंच चीख
अथवा

निढाल हो
अकेले
सूली पर चढ जाना !
अर्थ नही पाना !

सुबह इन मादो का मुँह खुलना
शाम का
मकानो मे
मकानो का
शाम मे
फीके-फीके घुलना ।

दुपहर को
भाय-भाय
अर्थ नही
आय बाय ।

सहमति नही, भाषा नही, प्रस्ताव नही ।
कोई अनुभाव नही ।
इतनी समीपता,
इतना नैकट्य,
इतना सहवास
किन्तु स्पर्श मे
पुलक नही ।

हर दिन मकान की पीठ पर नये मकान
हर दिन
शहर की सीढ़ी पर

नया शहर
किन्तु नवागन्तुक के आने का
बोध नही,
हर्ष नही,
दु ख नही,
क्रोध नही ।

दर्पण

उसके वियाबान जीवन में
नंगी हवा-सा
ठिठुरा,
हताश
और मारा
मैं आता हूँ।
उसकी बंजर, पठार-सी
हथेली पर
इच्छाएँ ओढ़
सिकुड़ जाता हूँ।
उसके बाज़ू से लिपट
बाज़ू
जाँघों से लिपट
जाँघें
सतहों से लिपट
सतहें
हो जाता हूँ।

उसके वियाबान जीवन को
दर्पण की तरह
मैं उठाता हूँ।

(उसके खुरदरे प्राकृत कन्धो पर
झुक
सिर धर
— जानता नही हूँ मैं —
रोता है कौन,
वह या मैं ?)

मेरा बाँया हाथ

छलनी होकर झूल रहा है
मेरा बाँया हाथ।
कोई नही
जियेगा मेरे साथ।
अंधकार मे
एक बार
मैंने जाने
किसको पुकार कर
झुका लिया है
माथ।

हेर-फेर

रथ मे जुते हैं दो उल्लू
पहियो की जगह
बेज़ुबान है
(आसमान है)
शहर मे भगदड है—
चिडियाँ
घोसलो से सिर निकाल
टोह रही
हैं
एक पेड के नीचे
बडी देर से
हवा
बटोर रही है
पतझड है—
एक कवि दूसरे कवि से
समय पूछ
रहा है
वेश्याएँ खुश हैं
कुत्ते हडबडा कर
उठ आये हैं
नालियो से
भूँक रहे हैं

र
१

मेरा बाँया हाथ

छलनी होकर झूल रहा है
मेरा बाँया हाथ।
कोई नहीं
जियेगा मेरे साथ।
अन्धकार में
एक बार
मैंने जाने
किसको पुकार कर
झुका लिया है
माथ।

हेर-फेर

रथ मे जुते हैं दो उल्लू
पहियो की जगह
बेजुबान है
(आसमान है)
शहर मे भगदड है—
चिड़ियाँ
घोसलो से सिर निकाल
टोह रही
हैं
एक पेड के नीचे
बडी देर से
हवा
बटोर रही है
पतझड है—
एक कवि दूसरे कवि से
समय पूछ
रहा है
वेश्याएँ खुश हैं
कुत्ते हडबडा कर
उठ आये हैं
नालियो से
भूँक रहे हैं

दर्पण और दर्पण लड़ रहे हैं
सड़क पर

मेरे सामने समस्या है—
इस सारे क्रम का
मैं क्या करूँ ?

क्या उल्लुओं की जगह
इस रथ में जोत दूँ
दो कुत्ते ?
क्या पहियों को निकाल कर
लगा दूँ
दो बड़े-बड़े पत्ते ?

क्या बागडोर दे दूँ
✓ वेश्याओं के
हाथ में ?
क्या चिड़ियों को
फुर-से उड़ा दूँ ?
क्या कवि को
समय से
✓ समय को
कवि से
लड़ा दूँ ?

मेरे सामने समस्या है—
किसको किस नाम से
पुकारूँ

आईने को आईना कहूँ
✓ या
इतिहास ?
जैसे ही पहिचाना लगता है
वैसे ही
✓ अपनी किसी नस में
झन्नाटे के साथ
टूटता है
आकाश !
तलाश किसकी है
कौन मिलता है !

होस्टल

खिड़कियाँ खुलती हैं, दरवाज़े बन्द
पसन्द
ज़माने को
कैदखाने की
जीवनी रच डाली मैंने उत्तर से
दक्षिण की
तरफ़ भागती हुई
दीवार पर !
चलकर एक अभिनेत्री, चलकर एक
अभिनेता
धार पर
(कटार पर)
गुम अंधेरे में
मुर्गियाँ दरबे में
पंख फड़फड़ा कर
फिर डेरे में—
दिन भर
अपनी गरदन
हाँका कर
दो पैरों पर चलता हुआ जंगल
अंधेरे में—
क्या नहीं करते हैं दरबान,

गुजर रही
गाडियाँ । याद नही
आता है प्रेम—
घबराहट ।
अक्षयवट
झूलती
भुजाओ मे ।
नसो मे,
गोल-गोल
डूबता जहाज,
बाज
मार कर झपट्टा
ले उडता है
शहर को—
एक-एक शहर मे
एक-एक
होस्टल
बार-बार जन्म
लेने का
अहकार
सेने का
लेता है
सुख
कही
नही
दुख ।

बन्द पृथ्वी का प्रेम

बन्द एक पृथ्वी मे नियतिवश इकट्ठे हैं
हम दोनों
—थोडी-सी तुम
और थोडा सा मैं।

बन्दी हम दोनो की कविता से
झाक रहा
जीवन अर्थात् एक
अन्तहीन बहस की
मैल-भरी तह
और अपनी ही परिक्रमा करता
आकाश।

बाध्य हैं हम दोनो
एक-दूसरे से घृणा
करते हुए
करने को
प्यार।

एक दूसरे का डाह-भरा मौन
अपने अँधेरे मे
विवश हो
छिपाये हुए

हम दोनो
बन्द एक पृथ्वी मे
कब से रच रहे हैं
दोहरा ससार।

धन्य हम दोनो का घबराया प्यार।

एक के न होने पर
अपना अकेलापन
ढोने का भय।
अनसुने
रोने का भय।

बाध्य हैं हम दोनो
एक-दूसरे की उपस्थिति को
घृणा के सिहरते हुए
हाथो से
करने को
दुलार।

बन्द एक पृथ्वी मे
जीवन-भर
एक-दूसरे से नहीं
करते रहे
खिड़की से
प्यार।

√ वह मेरी नियति थी

कई बार मैं उससे ऊबा
और
नहीं-जानता हूँ किस ओर
चला गया ।

कई बार मैंने सकल्प किया ।
कई बार
मैंने अपने को
विश्वास दिलाने की कोशिश की—
हममे से हरेक
        सम्पूण है ।

कई बार मैंने निश्चय किया
जो होगा सो होगा
        रह लूँगा—
और इस खयाल पर
        मुग्ध होता हुआ
स्वय पर मैं मुग्ध हुआ
कि मैं एक पहाड हूँ
√   समूचे आकाश को
                अकेला सह लूँगा ।

कई बार मैंने पौरुष का नकाब ओढ़
वह कुछ छिपाना चाहा
जो अन्दर
कुरेद रहा था।

कई बार एक अँधेरे से निकल
दूसरे अँधेरे में
जाने की कोशिश की,
लेकिन प्रत्येक बार
रुका
और
मुड़ा
और
नहीं जानता हूँ क्या
अपने ही बनाये हुए
रास्तों को
अपनी ही
पीठ लाद
वहीं लौट आया
यह जहाँ
निढाल पड़ी हुई थी

कई बार मैं उससे
लड़ा
लेकिन प्रत्येक बार
वहीं लौट आया।

एक और ढंग

भागकर अकेलेपन से अपने
तुममें मैं गया।
सुविधा के कई वर्ष
तुममें व्यतीत किये।
कैसे?
कुछ स्मरण नहीं।

मैं और तुम! अपनी दिनचर्या के
पृष्ठ पर
अंकित थे
एक संयुक्ताक्षर!

क्या कहूँ! लिपि की नियति
केवल लिपि की नियति
थी—
तुममें से होकर भी,
बसकर भी,
संग संग रहकर भी
बिलकुल असंग हूँ।

सच है तुम्हारे बिना जीवन अपंग है।
—लेकिन! क्या लगता है मुझे

प्रेम
अकेले होने का हो
एक और ढग है ।

युगल

सारा का-सारा सका न पा,
सारा का सारा सका न द।
मै तुमम घुटता रहा और
अपने म चुकता रहा किन्तु
तुमको म सारा सका न पा
अपने का सारा सका न द।

अनखुल पडे है कई अभी
भी नही-जानता कौन द्वार।
परिचय पर सारे गया फैल
वेणी म गूँथा अन्धकार।
हम एक दूसर से परिचित
होने की काशिश म कुछ और
अपरिचित हाकर
गुजर रहे हैं एक-दूसर के
समीप स लगातार।

प्रत्येक सुबह तुम लगती हो
कुछ और अधिक अजनबी मुझ।

जून

कहीं
पर
गुज़र
जाती
है
कोई
दूर
[illegible]

कहीं
पर
दिख
जाती
है
कोई
कहीं
न
थी
अब
तक
जो
सि
ह
को

वही
पर
धूल
और
गरारे
मे
खडी
एक
ल
ड
की
दुपहर
की
जघा
पर
बैठे
ही
बैठे
घुल
जाती
है
प
हु
को

सूचना

हरेक का पता पूछती हुई—जून ।
दुपहर
के
बोझ
से
घुली जा रही
है
उमर
खत्म
हो
रही
है
धो
रही
है
जीत ही जाने
का
मैल
घाट पर
बाट
पर
बैठी हुई

छाया
सिर
हिलाती
है ।

[नोट] दुख ऐसे भी होता है, वैसे भी । कैसे भी चलिए

गलत रास्ते की पहचान
क्या है ?
सारा जगल
एक छोटे-से
पोखर को
दबोच कर
खड़ा है
पड़ा है
रास्ते पर
✓ दूसरे का सच ।
(क्या मैं उठा लूँ ?)

चोंच में दबाकर
कहाँ लिये जाती है
चिड़िया
आकाश का ?
(बार-बार
रौंदी हुई
घास को
कैसे अमर
कर दूँ ?)

अकेले जो रहा है
यह दरख्त सौ साल से
चाल से
पता नही चलता
आता है
कौन
(कुत्ता
या
पोस्टमैन ?)
मैं
कही भी
हो सकता था
नही भी
(वह होती नही तब भी) होता वह
सब ही
जो
वैसा का वैसा
रह
गया है

[सूचना] निबह गया है

सकट, गुजरने का दृश्य,
टिकटघर की खिड़की
रक्तपात,
जडता,
अकेले आदमी का
बिस्तरा !

[निष्कर्ष] इधर से आओ या उधर से गुजरो—जिस तरह भी।

प्रेस-वक्तव्य

हे ईश्वर ! सहा नहीं जाता है मुझसे अब
औरों की सुविधा से
जीने का ढंग ।

सही नहीं जाती है मुझसे
कानाफूसी, मूर्खता,
सिनेमाघर, लड़कियाँ,
खुशामद
और
गर्द ।

कई औरतों को खुश
करने की कोशिश में
कई शक्ल
बदल रहा
सोफे पर बैठा
नामर्द ।

हे ईश्वर ! मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा
यह मनोरंजन ।
सहन नहीं होगा
यह

गमले का कैक्टस
पिकनिक के
चुटकुले
ऑफिस का ब्योरा
और
देशभक्त कवियों की
कविताएँ।
(क्षमा करें महिलाएं)
मैं अपने कमरे में खड़ा हूँ नग्न—

हे ईश्वर! मुझे कशाघातों से छील-छील
दो इतनी बेचैनी—
मैं इसी तरह निर्वसन
सड़क से
गुजर जाऊँ।

फिर जन्म लेता है नगर

पौ फटी, हटता कुहर
अँधेरे के बाद भी कुछ
बच गया,
        आता नजर।
साफ पश्चिम की सडक
    पर
        भागती
गुमनाम लडकी ने कहा,
फिर जन्म लेता है नगर।

आत्मघात

भरे ताल पर
बिजली कूदी
लाज छोड़ कर
नग ।
बरगद
खड़ा
असग ।

बौछार

वर्षा की पहली बौछार, नहीं, पृथ्वी पर
जड़ें फेंक दी हैं आकाश ने ।

सब कुछ

सुबह—
खुलती हुई पृथ्वी है, खुलता हुआ यह आकाश है।
सब कुछ,
मेरे होने का अहसास है।

बालू पर पतवार

टूट गयी हैं बाँह जैसे बालू पर पतवार—
काश ! मिला होता
जीवन मे प्यार।

हिल जाती है डाल

कुछ भी होता नही, बस कही हिल जाती है
डाल ।
याद आता है गुजर गये हैं कितने
साल !

बहन का चित्र

आँगन के कोने मे दुखी-सी खडी हुई उन्हरी गुलचाँदनी ।

दो सखियाँ

घास के खेत मे करती है हिस-हिम हवा ।
कहती है शरद की पूनो पुकार
चाँदनी मे छप्पर छवा, चाँदनी मे छप्पर छवा

किशोर

जलों को लाँघता, नदियाँ फलाँगता
घोड़े पर सैर
आम्र मे
आया है कैर ।

उषा

घुलते कन्धों पर सोने के केश खोल कर
एक मुलायम युवती देख रही है,
कविताएँ कैसे घर की बहुएँ बन
प्रातः फट रही हैं।

भोर

गायें वक्षस्थल की ओर!

परित्यक्त

घनरापर दुबकी पटी हैं
भुजाओं म
दाबाएँ
ओगो के दावो मे
प्रत्युत्तर सोये हैं—

घर-भर की नींद पर पहाड़
फाड़
मुँह
एक घूरे पर ज्योतिष का
पेड़
भापता है
आसमान—
बियाबान
बिस्तर पर
चढ़-चढ़कर
गट गढ़कर
अपने
मजार को

प्रचार को
अपनी कविताओं की
पीठ पर

चीख महल की एक खिडकी की
दुबली आकाक्षा मे
- लपक रही
सीढी पर
गिर-गिरकर
घिर-घिरकर
अपनी विवशताओ पर
बाकी
जन्मो की
हवाओ पर
मेरे लौट आने की
चर्या फिजूल थी
मेरी दो उँगलियो म
फँसी हुई
दुनिया
मशगूल थी

मैं उसे जानता नही
न
अपने को
देख
रहा
हूँ
केवल
अपने
को
इमली के दपण मे

सुतो हैं
गिरे हुए
रास्ते
समर्पण
मे

दूसरे का डर

कोई मेरे पास बैठा हुआ है
पर दिखाई नही देता।
जिस तरह मैं
पुस्तक पढ रहा हूँ
उसी तरह वह भी।

कोई मेरे बिस्तरे पर
आकर
सो गया है।
कोई मेरा बोझ
अपने
कन्धो पर
ढो गया है।

कोई मेरे साथ
कपडे
बदल रहा है।
कोई मेरे पैरों
चल रहा है।

कोई मुझसे रूठा और ऐंठा हुआ है
जो दिखाई नहीं देता।

कोई मुझे अपना
हर-एक काम
करता हुआ
टोह रहा है।

कोई मुझे काम
खत्म होने की
सरहद पर खड़ा
जोह रहा है।

कोई मेरी घड़ी को
अपनी कलाई में
महसूस
कर रहा है।

बुजदिल! दिखाई नहीं देता
मेरे आसपास
कहीं छुपा हुआ
मुझसे
डर रहा है।

जन्मपत्री

फिर से जन्म लेने की इच्छा
खड़ी हुई है
सिरहाने
    मैं इसी बहाने
    देखता हूँ
    आईने में
        उड़ती हुई
            धूल को
            बबूल को
                बबूल
                किये जाता है
                    समय—
                    असमय
                    काँव-काँव
                        करने
                    मौसम—
                    बेमौसम
                        झरने
        जहाज पर उछलकर
        अपना दस्तखत
            किया है
                लहर ने

मैं अपना जहाज
और अपना हस्ताक्षर
दोनो को
दराज में
समाज में
किशोरियाँ
आकाश में
आवारा
मैं दास
होकर
रह गया—
कवि नहीं हुआ
बददुआ
प्रसिद्धि को
दुनिया में
हरेक के
जहाज का नमूना
जहाज पर
अनाज पर
झपटता है
चिड़ियों का
झुण्ड
त्रिशूल सा
गढ़कर
रह जाता है
कवि
दुख को
ढो ढोकर

माया दर्पण

ले जाती है
मधुमक्खी
छत्ते मे
जातियाँ
रस्म अदा करती है
चलने
जाने की
अंतिम गाने की
स्वरलिपि
करता है तैयार
ससार
हर रोज़
सवेरे-सवेरे
खिलखिलाता है
जन्म लेने के बोझ से
दबा हुआ
चूहा
बगल मे गुजरते हुए
पानी का
शोर
दिन भर
दिन-भर
नगराकार मृत्यु के कुएँ मे
सायकिल
चलाता है
सुभान
सावधान

हरेक नगर को
नापता है
गुमान

मैं क्या करूँ अपनी
इच्छाओं का
जो
रोज बदल रही
हैं
पैरों का
ढंग
नग घड़ग
चली आती हैं
युवतियाँ
सीने में
गुजरती इच्छाओं के
आखिरी
महीने में ।

निष्फल

किसी भी उजाले के छोटे से गड्ढे मे
जाकर मुँह घोने की
खोज—
        रोज़-रोज़ ।

किसी भी सडक पर जा भीड या कि पतझर म
अपने कुछ होने की
खोज—
        रोज़-रोज़ ।

अपने ज़माने की एक अप्रिय दुनिया म
अपने प्रिय कोने की
खोज—
        रोज़-रोज़ ।

हरेक नगर को
नापता है
सुभान
मैं क्या करूँ अपनी
इच्छाओ का
जो
रोज बदल रही
हैं
पेशो का
ढग
नग-धडग
चली आती हैं
युवतिया
सोने मे
गुजरती इच्छाओ के
आखिरी
महीने मे।

निष्फल

किसी भी उजाले में छोटे से गड्ढे में
जाकर मुँह धोने की
खोज—
　　　रोज-रोज!

किसी भी सड़क पर जा मोड़ या कि पतझर में
अपने कुछ होने की
खोज—
　　　रोज-रोज!

अपने जमाने की एक अप्रिय दुनिया में
अपने प्रिय गाने की
खोज—
　　　रोज-रोज!

समाधि-लेख

हवा में झूल रही है एक डाल कुछ चिड़ियाँ
कुछ और चिड़ियों से पूछती हैं हाल।
एक स्त्री आईने के सामने
सँवारती है बाल।
कई साल
हुए
मैंने लिखी थी कुछ कविताएँ।
तृष्णाएँ

साल खत्म होने पर
उठकर

अबाबीलों की तरह
टकराती, मँडराती,
चिल्लाती हैं।

स्त्रियाँ
पता नहीं जीवन में आती
या जीवन से
जाती हैं।

आयें या जायें।
अब मुझमें एक अन्धे
पैरों की आहट
सुनने का उत्साह न

मैं जानता हूँ एक दिन यह
पाने की विकलता
✓ और न पाने का दुख
दोनो अथहीन
हो जाते ह।

नींद मे बच्चे कुनकुनाते ह।
माएँ जग जाती हैं।
घर से निकाली हुई स्त्रिया
द्वार पीटती हैं
और द्वार नही खुलने पर
बाहर
चिल्लाती हैं
मुझे तिलमिलाती है
मेरी विफलताएँ
✓ घर के दरवाजे पर
'हमारी माग पूरी करो'
नारा लगाती ह।

मै उठता हूँ और उठकर
खिडकिया, दरवाजे
और कमीज के बटन
बन्द कर लेता हूँ
और फुर्ती के साथ
एक कागज पर लिखता हूँ
✓ 'मै अपनी विफलताओ का
प्रणेता हूँ।'

युद्ध हो या न हो

एक दिन
चलते चलते भी
मेरी धड़कन हो
सकती है बन्द,
मै बिना
शहीद हुए भी
मर सकता हूँ।
यह मेरा सवाल नही है
बल्कि
उत्तर है
'मैं क्या कर सकता हूँ।'

मुझसे नहा होगा कि दोपहर को बाग दूँ। या सारा समय
प्रेम निवेदन करूँ। या फैशन परेड मे
अचानक धमाका बन फट पड़ूँ।

जो मुझसे नही हुआ
वह मेरा ससार नही।
कोई लाचार नही
जो यह नही है
वह होने को।
मै गौर से सुन सकता हूँ
औरो के रोने को
मगर दूसरे के दुख को
अपना मानने की बहुत
कोशिश की, नही हुआ।
मेरे और औरो के बीच
एक सीमा थी

मैंने जिसे छलने की कोशिश मे
✓ औरो की शर्ता पर
प्रेम किया ।

मुझसे नही होगा ! मे उठकर एक बार
खिड़की से झाककर
अचानक चिल्लाता हूँ ।
मैं बार-बार
✓ नौकरी के दफ्तर
और डाकघर तक
जाकर लौट
आता हूँ
अर्जी और अपना प्रेम-पत्र लिये
अपने जमाने मे
कितना बडा फासला है
एक कदम के बाद
दूसरा उठाने मे !

मगर मैंने कोई फासला नही
केवल अपने को तय
—नही झूठ नही बोलूँगा—
क्षय किया ।

मै अकेला नही था !
मेरे साथ एक और था
जो साथ साथ
चलता था और कभी कभी
मुझे अपनी जेब मे

एक गिरे हुए पत्त-सा
उठा कर रख लेता था।
मै जानता हूँ
हरेक की नियति ही यही है
कि कोई और उसे
खर्च करे।

एक आदमी दूसरे का और दूसरा तीसरे का
दहेज है।
जिसकी वाणी मे आज तेज है
दस साल बाद
वह इस तरह लौट आता है
जैसे किसी वेश्या के कोठे से
अपने को बुझाकर।
गाकर रिझाकर
वह क्या पाना
चाहता था ?

शायद मै यही
ठीक इसी जगह
आना चाहता था—
बाहर समुद्र है,
ताड है,
आड है।

मैं जानता हूँ
अपने को छिपाकर
हर आदमी
प्रतीक्षा कर रहा है।

जिसे करनी हो क
जिसे रहना हो रहे
प्रतीक्षा के 'क्यू' में
और प्राप्ति की गोद में,
भुजाओं में ।
जिसे लूट का माल
और ठगों का प्रेम
ले जाना हो ले जाये
नावों में
बाकी लोग डाह में ।
जीवन बितायेंगे
मल्लाहों की तरह
बन्दरगाह में ।

कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर
फिर
बेचेंगे क्रान्ति की (अथवा
षडयन्त्र की)
कुछ और लोग
सारा समय
कसमें खायेंगे
लोकतन्त्र की ।
मुझसे नहीं होगा !
जो मुझमें
नहीं हुआ वह मेरा
संसार नहीं ।

शोक

यह वक्त मेरा वक्त
नही था
नही था
ठिकाना
दिन
जाकर छू आता है
ज्वर मे
तपते हुए
पहाडो का माया
या पेडो को
कन्धो पर
उठाये बन्दूक सा
गाता है
गुजरते हुए सैनिक का
गा
फटता है
बम !

मैं चिल्ला कर
कहता हूँ—
मैं था जो
जाकर कही और
फट

पडा हूँ !

कोई यकीन नही करता !
मै अपनी युवावस्था के
शव को
उठाये हुए
अपने
कन्धो पर
घूम रहा हूँ
देश-देश मे
(मै सोच नही पाया
मै असल लगता हूँ
किस वेश मे)

झरने म गिरकर
हो जाती है
झरने की
मेरी यह परछाई !

अपने किस परिचित नगर को
आवाज़ दूँ ?
काले पहाड का
बाँधकर भुजा पर
तावीज-सा
चला आ रहा है
यह आसमान
—देख रहा हूँ कब से ?
दर्रे-दर्रे मे

किसी के न आने की
छाप है
मेरी कविता मे
सताप है
शोक है—
वहा पर । न जाने कहाँ पर
डूब रहा है
जहाज़ ।

चौथा शहर

हरेक शहर म कुछ देर
                घेर
घर को, दरख्त को,
आगन को
        और फूलदान को
दूसरे शहर मे ।
हरेक सडक की जघा का
                उघाड
धुचलकर
        मैदान को
दूसरी सडक पर
        नज़र आता है
                जब तक—
तीसरा शहर बसने लगता
        और चौथी सडक
                चलने लगती है ।

स्त्रियाँ, कहाँ से निकल आती हैं ?
    बूढे, जो कल ही
        मर चुके थे,
            कहा से चले आते ह ?
हरक स्त्री से और हरक बूढे से

दुपहर का स्नान

बाँसो के झुंझकुर मे अपनी लाज फक कर
एक भेडिये की खरोच
अपने नितम्ब पर (मूर्छित पोखर !)
एक कही पर बैठी पिडकुलिया
चिल्लाकर, जाती है उड
✓ और दोपहर भग
(सारा जगल दग !)

दो टूक रास्ता

जल !
चलता आता है
ढँकता है
मैदान का
धान को
पुकारता
मौसम
खो
जाता है
गाता है
इतना हो
हरेक का
हरेक से
इधर मे
होगा
होता है
सोता है
जहाँ
चादर ओढ़ा
घुटनों मे—
आसमान
रंगा है सा

टँगा ही हुआ
है

सोचने का समय
मिला
देखता हूँ
जो भी रास्ता
घुला
हुआ है
सारे संसार की
सडक पर
दो-टूक कवि
पशाब करता
हुआ
चला
गया है
नया है ! बिलकुल नया
मेरे सोचने का
ढग
दग
हूँ
मैं खुद
अपने
आप पर

राणा प्रताप पर
मैंने लिखा था
एक
शोध-ग्रन्थ
अपने

युवाकाल मे

साल में, कभी-हो कभी
यह टोसता है
कुछ भी नही
हुआ
इस साल मे
जजाल मे
पडकर भी
कोई नही
कहता
छुडाओ
या
छोड दो

तोड दो
मुझे
जो अब तक
नही
टटा

लूटा
है
जिसने
यौवन
और
प्रेम
और
यौवन
और
प्रेम

और
यौवन
और
प्रेम
को
(वही)
सुखी
है
(जगल की आखो मे जगल के लिए बेरुखी है)
अपूव
दिशा के
नितम्ब पर
स्खलित करता है
अपने
शौय को
तेजस्वी
सूय
कराहती हैं
सारे शहर की
वेश्याएँ
जैसे
सारे शहर की
वेश्याओ पर
सूरज
सवार था
गँवार था
निश्चय
गँवार था

वह कवि
जो जूझा नही
✓ जधा
और
उरोज से—
फसलो
आशका की
कविता करता था
झरता था
अपने ही पत्ते
अपने
आसमान को
छोटा
करता हुआ
निष्प्रभ
तैल चित्र-सा
टाँगता था
अपनी
दीवार पर

संसार पर
थूकता हुआ
✓ चला जाता हूँ
मैं
बड़बड़ाता हूँ
मैं जिसे
सुनना
नहीं हो
चला जाय

भाया

हाय-हाय ! करने का
अधिकार
मैंने
धनिकों को
नहीं
दिया है
गरीब को—
बदनसीब को
बेवा को
देखकर
खटकता है
अपना
अस्तित्व
ठण्डा मत
करो
इस
सन्ताप को
भाप को
उठने दो
- भीगी हुई
सड़क
से
गुजरने दो
हरेक को
युगल
और
मृत्यु
को

तावीज

जीने की मैली चादर ओढे
इन्तजार
करता बैठा है वह
अन्त का।

बुरी तरह भूला जा चुका है
जहा पर
पहिया
रुका है
वहा पर
पहले
पता नही
क्या था।
घास थी ? प्रेम था ?
या ऐसा ही
था जैसा
यह
मेरे
साथ है ?
यह मेरा हाथ है
यह मेरी कोहनी है
यह मेरी पीठ है

ये मेरे घुटने हैं

यह मेरी आखो मे
आँखें डाले
बैठा हुआ
बियाबान है।
भुजा से गिरकर
कुछ
अलग हो गया है—
शायद
तावीज़।

सीने मे कुछ नही
गुफाओ मे
कुछ नही
कही पर
कुछ—
सब कुछ को
नष्ट करने के
प्रयत्न मे
सभी कुछ
नष्ट हो
चुका है
भूला
जा
चुका
है।

बुखार मे कविता

मेरे जीवन मे एक ऐसा वक्त आ गया है
जब खोने को
कुछ भी नही है मेरे पास—
दिन, दोस्ती, रवैया,
राजनीति,
गपशप, घास
और स्त्री हालाकि वह बैठी हुई है
मेरे पास
कई साल से
क्षमाप्रार्थी हूँ मैं काल से
मैं जिसके सामने निहत्था हूँ
निसग हूँ—
मुझे न किसी ने प्रस्तावित
किया है
न पेश ।

मच पर खडे होकर
कुछ बेवकूफ चीख रहे हैं
कवि से
आशा करता है
सारा देश ।

मूर्खो ! देश को खोकर ही
मैंने प्राप्त की थी
यह कविता
जो किसी को भी हो सकती है
जिसके जीवन मे
वह वक्त आ गया हो
जब कुछ भी नहीं हो उसके पास
खोने को।
जो न उम्मीद करता हो
न अपने से छल
जो न करता हो प्रश्न
न ढूँढता हो हल।
हल ढूँढने का काम
कवियो ने ऊब कर
सौंप दिया है
गणितज्ञ पर
और उसने
राजनीति पर।
कहाँ है तुम्हारा घर ? अपना देश खोकर कई देश लाँघ
पहाड से उतरती हुई
चिडियो का झुण्ड
यह पूछता हुआ ऊपर-ऊपर
गुजर जाता है कहा है तुम्हारा घर ?
दफ्तर मे, होटल मे, समाचार-पत्र मे,
सिनेमा मे,
स्त्री के साथ एक खाट मे ?
नावें कई यात्रियो को
उतारकर

वेश्याओ की तरह
थकी पड़ी हैं घाट मे ।

मुझे दुख नही मैं किसी का नही हुआ । दुख है
कि मैंने सारा समय
✓हरेक का होने की
कोशिश की ।
प्रेम किया । प्रेम करते हुए
एक स्त्री के कहने पर
भविष्य की खोज की और एक दिन
सब कुछ पा लेने की
सरहद पर
दिखा एक द्वार एक ड्राइंगरूम ।
भविष्य
वर्तमान के लाउंज की तरह
कही आकर खुल
जाता है ।
रुको,
कोई आता है
सुनाई पड़ती है
किसी के पैरो की
चाप ।
कोई मेरे
जूतो का माप
लेने आ रहा है ।

मेरे तलुए घिस गये हैं
और फीतों की चाबुक

हिला–डुला
मैंने आसपास की भीड को
खदेड दिया है,
भगा दिया है।
औरो के साथ
दगा करती है स्त्री
मेरे साथ मैंने
दगा किया है।
पछतावा नही, यह एक कानून था जिसमे से होकर
मुझे आना था।
असल मे यह एक
बहाना था
एक दिन अयोध्या से जाने का
मैं अपने कारखाने का
एक मजदूर भी
हो सकता था
मैं अपना अफसोस
ढो सकता था
बाजार मे लाने को
बेचैन हो सकता था कविता
सुनाने को
फिर से एक बार इसे और उसे और उसे
पाने को

लेकिन एक बार उड जाने के बाद
इच्छाएँ
लौटकर नही आती
किसी और जगह पर

घोसले बनाती हैं
विधवाएँ बुडबुडाती हैं
रँडापे पर
तरस खाती हैं
बुढापे पर
नौजवान स्त्रिया
गली मे ताक-झाक करती हैं
चेचक और हैजे से
मरती हैं
बस्तिया
कैन्सर से
हस्तियाँ
वकील
रक्तचाप से
कोई नही
मरता
अपने-पाप से

धुआँ उठ रहा है कई
माह से । दिन
चला जाता है
मारकर छलाँग एक खरगोश-सा ।
बन्द होनेवाली
दुकानो के दिल मे
रह जाता है
कुछ-कुछ अफ़सोस-सा ।

अन्तिम वक्तव्य

[इसके बाद कुछ कहना बेकार है]

आदमी से प्रेम करने का ठेका
            ले रखा है
कसाई ने।
मुझे न औरों से
प्रेम हैं
            न अपने से।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
हूँ।

मैं कहना कुछ [illegible] हूँ
कुछ और

मर जाता हूँ—
रूठे हैं समस्त कवि
गायक
पत्रकार

आत्माएँ
राजनीतिज्ञों की
बिल्लियों की तरह
मरी पड़ी हैं
सारी पृथ्वी से
उठती है
सड़ाँध !

कोई भी जगह नहीं रही
रहने के लायक
न मैं आत्महत्या
कर सकता हूँ
न औरों का
खून !

न मैं तुमको जख्मी
कर सकता हूँ
न तुम मुझे
निरस्त्र !

तुम जाओ अपने बहिश्त में
मैं जाता हूँ
अपने जहन्नुम में !



श्रीकान्त वर्मा

जन्म १८ सितम्बर १९३१ बिलासपुर (मध्यप्रदेश)। नागपुर विश्वविद्यालयसे १९५६ में एम० ए० (हिन्दी) के बाद नियमित स्वतन्त्र लेखन और सम्पादन। इस समय टाइम्स ऑव इण्डिया के समाचार साप्ताहिक 'दिनमान'के विशेष संवाददाता।

प्रकाशन भटका मेघ (कविताएँ) १९५७ झाड़ी (कहानियाँ) १९६४ दिनारम्भ (कविताएँ) १९६७, और यह संग्रह।